आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और ऋषि परम्परा

ऋषि परम्परा अपने देश की परम्परा है। मैंने यह परम्परा और कहीं नहीं देखी। मैंने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को कभी देखा ही नहीं। इस तरह से मेरी उनके प्रति भक्ति अपौरूषेय है। मैंने श्री द्विवेदी जी को अपने मन में ही ऋषि के रूप में उभरते हुए देखा। मैं पैदा हुआ और बड़ा हुआ वह बहुत पूजा-पाठ वाला घर था। ऋषि पंचमी के दिन हमारे घर में ऋषियों की पूजा होती थी। दाल और अन्य सामग्री से ऋषियों का रूप बनाते थे। मैंने अपने दादा से पूछा कि हम ऋषि पूजा क्यों करते हैं?

दादा जी ने कहा ऋषि किसानों की तरह खेती नहीं करते थे लेकिन वे किसी से माँगने भी नहीं जाते थे। जो अनाज होता था उसे खेतों में फेंक देते थे और उससे जो उगता था, उसा को खाते थे और आश्रम के पास के फल खाते थे। यह सब खाकर ही वे तप और साधना करते थे। जब भी मैं उन्हें और इस परम्परा को याद करता हूँ तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अपने जीवन में मैं जहाँ भी गया, जहाँ ज्ञान की, तपस्या की परम्परा थी, वहाँ खोज की, पर कहीं भी, किसी भी संस्कृति में किसी भी देश में ऐसी परम्परा नहीं मिली। हमारी ऋषि परम्परा जैसा कुछ पाया ही नहीं। ग्रीस में अरस्तू। जैसे द्रष्टा को पढ़ते थे क्योंकी वहाँ भी ऋषि केवल द्रष्टा नहीं थे, न ही केवल ज्ञान वाले लोग थे। वे एक साधारण गृहस्थ का जीवन जीकर, साधारण व्यवस्था से अपने को अलग रखकर, समाज की सेवा के लिए जीते थे।

कोई ऐसा ऋषि नहीं है, जो समाज के लिए उपयोगी न सिद्ध हुआ हो, जिसने समाज के लिए ेक महाुपकरण न बना के दिया हो। इन्द्र को जब वज्रकी जरूरत पड़ी तो दधीचि ने अपनी हडिडयाँ दीं। संजीवनी की जरूरत पड़ी, तो शुक्र सामने आये। ऋषि समाज के अंग नहीं थे, लेकिन उसको उन्होंने छोड़ा नहीं। वे उससे स्वेच्छा से अलग रहते थे और एक साधारण नागरिक का जीवन जीते थे।

वे राजा की मदद करते थे, लेकिन राज्य का अंग नहीं थे। जब-जब राजा गड़बड़ करता, हुंकार से उसकी खटिया खड़ी कर सकते थे। राज्य के लिए, समाज के लिए, कितने ही मंगल कार्य करके भी ऋषि कभी व्यवस्था का अंग होकर, राज्य का अंग होकर नहीं रहे। वे उन सबसे ऊपर थे। इसलिए ऋषि अपने को स्वयं देवता से कम मानने वाले नही थे। मुझे लगता है कि ऐसे सात्विक अंहकार को क्या कहूँ आत्मविश्वास हर ऋषि को था कि मैं ब्रह्मा का पुत्र होऊँगा, लेकिन ब्रह्मा से नीचे नहीं हूँ। यह परम्परा आप देखेंगे, अपने देश में कहीं नहीं मिलती। सुझे जितनी कहानियाँ बचपन में चकित करती थी, उनमें थी बृहस्पति और शुक्र की कहानी। जब राक्षसों के गुरु होने के नाते शुक्र के संजीवनी सिखाने से राक्षस पराजित नहीं होते थे, तो देवता एक दिन परेशान होकर बोले कि यह युद्ध अनन्तकाल तक चलेगा, हम कभी विजयश्री प्राप्त नहीं करेंगे। उन्होंने वृहस्पति से जाकर पूछा' क्या हम भी संजीवनी सीख लेंगे'। 'आप सीखेंगे', उन्होंने कहा 'अब मेरे अवसर तो है, नहीं'। देवताओं ने सुझाया कि आपका पुत्र है कच। उसे क्यों नहीं भेज देते, उनसे सीखने के लिए। तो कच तैयार हो गया और गया शुक्र के आश्रम में और बोला 'मैं कच, बृहस्पति का पुत्र आपसे संजीवनी विद्या सीखने आया हूँ'। शुक्र को एक क्षण भी नहीं लगा यह समझने के लिए कि यह देवताओं का षड़यंत्र है, लेकिन वे ऋषि थे और कच को मना नहीं कर सकते थे। उनका एक वक्या है जो मैं समझता हूं, अपनी परम्परा का उत्तम शब्दों में बखान है। उन्होंने कहा, 'मैं समझ रहा हूँ कि तुम क्यों आये हो। मैं तुम्हें स्वीकार करता हूं इसलिए कि तुम आये हो, शिष्य बनना चाहते हो और शिष्य बनने लायक हो' ऐसा कहते हुए ऋषि वृहस्पति को अपना प्रणाम भेजता है। वे जानते थे उसके बाद क्या होगा। जो होना था, वह हुआ भी। लेकिन एक ऋषि अपना विद्या को सिखाने का काम शत्रुत्व के कारण छोड़ दें, यह संभव नहीं था।

इसी कथा में आगे आती है नहुष की कहानी। इन्द्र ब्रह्महत्या की वजह से छुपा हुआ था और नहुष राजा बन गये। कुछ समय बाद उन्होंने कहा, 'मैं इन्द्र हूँ तो इन्द्राणी भी मेरी होना चाहिए। इन्द्राणी ने कहा, ठीक है, तुम सप्तऋषियों द्वारा

उठाई गई पालंकी में आ जाओ, मैं तुम्हारी हो जाऊँगी। सप्तऋषियों ने उसे उठा लिया, नहुष उतावला था वह ऋषियों को कहता रहा सर्प, सर्प, यानी शीघ्र। थोड़ी देर बाद ऋषियों ने पालंकी को नीचे रखा और नहुष को शाप दिया कि तुम सर्प हो जाओ। मैं यह कहानी इसलिए सुना रहा हूँ कि जो ऋषि नहुष की पालकी ले जाने के लिए तैयार हो जाते हैं वे एक मर्यादा पार करने पर उसको दंडित भी करते हैं। ऋषि जो राजा की मदद हर वक्त करते थे, लेकिन राजपाट में भागी नहीं थे, व्यवस्था चलाने में मदद करते थे, लेकिन व्यवस्था भंग होने पर उसे टोकते भी थे।

मैं जब द्विवेदी जी के निबंध पढ़ता था तो उसमें जो छवि उभर कर आती थी वो ये भी कि यह व्यक्ति जरूर एक ऋषि होना चाहिए। मैंने कभी उनकी तस्वीर भी नहीं देखी थी।

मित्रो, ऋषि शब्द का मतलब ही गति और परिवर्तन है। यानी अपने यहाँ जिस व्यक्ति या संस्थान को इतना ऊँचा दर्जा दिया गया वह गति और परिवर्तन का द्योतक है। हमारे इस लगातार परिवर्तनशील संसार में ऋषि की भूमिका यह है कि व्यक्ति अपने को खोजता हुआ ब्रह्मत्व को प्राप्त करे। गति प्राप्त करने के बाद मोक्ष में न जाये, ब्रह्मत्व के साथ मिलकर ही इस सृष्टि की सृजन व पुनःसृजन में लगातार मदद करता रहे। हमारे यहाँ ऋषि का लक्षण, गुण, काम यह माना गया है।

द्विवेदी जी ने कहा,' कुछ भी शुद्ध नही होता'। उन्होंने अशोक के फूल में लिखा है 'सबमें आ-आकर अलग-अलग परम्पराएँ मिलती हैं' और वे सब ग्रहण करते हुए चलते हैं। सूरदास ने भी कहा है कि 'एक नदिया एक नार कहावत' इसी तरह ऋषि परम्परा भी उत्तर और दक्षिण से जुड़ती गई। मेरे एक मित्र थे पं. आत्रेय, संस्कृत के विद्वान् और प्रामणिक व्यक्ति थे। वे एक दिन हमारे घर आये, हमारे पिताजी को प्रात काल की पूजा करते और उनके श्लोक सुनते हुए बोले कि सच में आपका मालवा उत्तर और दक्षिण का मेल है। आपके पिताजी की आधी पूजा दक्षिणी परम्परा की है और आधी उत्तरी। यह जो परम्पराओं का मेल और ज्ञान का आदान-प्रदान है, यह हमारी परम्परा का अंग है। इसमें ऋषि-परम्परा भी कोई अछूती नहीं है। यह हमारा सौभाग्य है कि अछूती नहीं है। तभी तो मैं आज इस परम्परा के साथ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को यूँ जोड़ कर खड़ा हूँ। तरह - तरह, के ऋषि थे, महर्षि थे, राजर्षि थे, देवर्षि थे लेकिन हजारी प्रसाद द्विवेदी इस देश के एक ही लोकर्षि हुए क्योंकि वे लोक से निकलकर लोक की स्थापना करने वाले बड़े स्त्रष्टा-द्रष्टा थे।

यह माना गया है कि ऋषि द्रष्टा है यानी श्लोक वे बनाते नहीं, वे उनके पास आते हैं। उन्होंने देखा और बाकी दुनिया के सामने रखा। इसमें कई लोग यह तत्व भी देखना चाहते हैं कि जैसे कुरान प्रकट हुई है, बाइबिल प्रकट हुई, इसी तरह हमारी हमारी ऋचाएँ भी प्रकट हैं। मुझे इस बात में कोई श्रद्धा पैदा नहीं होती। ऋषियों को यह आए होंगे या सूझे होंगे जरूर। क्योंकि द्रष्टा और सूझने में भी, और सूझने से अपरने यहाँ बनाने और जोड़ने का भी एक अर्थ निकलता है। सूझा, यानी दिखाई दिया और समझ भी आया तो वे द्रष्टा भी और स्त्रष्टा भी थे।

स्त्रष्टा परित्यागी तरह-तरह के तप से जो-जो वे प्राप्त करते हैं वह दूसरों को समर्पित भी करते हैं। इसलिए ऋषि कभी राजा के लिए कुछ कर देते हैं, कभी देवता के लिए कुछ कर देते हैं, कभी अपने समाज के लिए कर देते है, सब विद्या तप से प्राप्त की हुई है। हर ऋषि कहीं न कहीं गुरु है लेकिन पाठशाला खोलकर पढ़ाने वाला गुरु नहीं, क्योंकि वह स्वयं द्रष्टा है कुछ शिष्यों को लेता है और उनको अन्वेषणकारी व्यक्ति बनाता है। वो ज्ञान की परम्परा को तुली परम्परा से, यानी मेरा बोझ तुम ले जाओ तुम्हारा बोझ वो लेगा ऐसा नहीं, इसलिए वो भिन्न प्रयोगों को लेता है गुरु शिष्य परम्परा। सबसे अच्छी कहीं दिखाई देती है तो हमारे संगीत में दिखाई देती है।

वे तपस्वी हैं और तरह-तरह की तपस्या करते हैं लेकिन तपस्या का मूल अर्थ, उद्देश्य यह हे कि आप अपने अन्दर इतना तप पैदा करें जो आपकी भोतिकता है यह अन्ततः ऊर्जा में परिवर्तित हो और उस ऊर्जा का प्रयोग आप सृजन के काम में कर सकें। ऋषि की राजनैतिक भूमिका भी है। ऋषि राजा की समाज को धारण करने में मदद करता है। लेकिन महल का

अधिकार, उसकी सत्ता ऋषि की उसको नैतिक स्वीकृति नहीं मिलती तो राजा का कुछ चल नहीं सकता। लेकिन वे कभी भी किसी राजा के राजवंश में दरबारी होकर रह गये हों, ऐसा आपको कहीं भी नहीं मिलेगा। जब भी मौका आया वे उसी राजा के जो धर्म विरुद्ध काम कर रहा हो, विरुद्ध खड़े हो जाते है।

जो नैतिक शक्ति से राज-शक्ति को अंकुश लगाने की परम्परा है वह ऋषि परम्परा है। हमारे ही समय में जब हमें आजादी मिली, तो गाँधी जी ने कहा, 'कांग्रेस को डिस्बैंड कर दो'। वे चाहते थे कि लोक-संघर्ष से सत्ता आये। इसी तरह जयप्रकाश नारायण ने भी १९७९ में कहा था।

ऋषियों की गृहस्थ भूमिका भी थी। वे गृहस्थ मात्र नहीं थे। राजाओं के जब वेश नहीं चले तो नियोग के लिए ऋषियों को ही बुलाते थे। ऋषि, संन्यासी होकर नहीं जी सकते क्योंकि सृजन रिक्रियेशन से ही होता है। ऋषियों का समय भगवान गौतम और भगवान महावीर के समय से शुरू नहीं हुआ था। गृहस्य जीवन ही मुख्य था, वही जीवन जिसमें उगाया गया दाना और फल, बूटी
आदि।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के बारे में मेरे मन में क्या आया? वे कुलीन घर में पैदा हुए। वे स्वेच्छा ले गरीबी में रहने वाले थे। इन लोगों के मन में ज्यादा इच्छाएँ नहीं होतीं जो गरीबी को शाप मानकर जीते है, वे लोग पैसे को देखते ही बदलते हैं। द्विवेदी जी ने अच्छे कुल में पैदा होकर दलितों पिछड़ों और दबे हुए पीडित लोगों का पक्ष लेना, निर्धनता से नहीं स्वेच्छा से किया। सबसे बड़ी बात जो मेरे मन में आती है वो ये है कि उन्होंने लोक को शिष्ट संस्कृत के विरुद्ध नहीं समानान्तर स्थापित किया।